www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
बुधवार 20 नवंबर 2019

दैनिक जागरण
आशा के बिना जीवन अर्थहीन है

कश्मीर के हालात

राज्यसभा में कश्मीर को लेकर मचे हंगामे के बीच सरकार की ओर से दी गई यह जानकारी बहुत कुछ इंगित करती है कि अनुच्छेद 370 खत्म होने के बाद घाटी में पत्थरबाजी की घटनाओं में कमी आई है और इसके चलते वहां हालात सामान्य बनाने में आसानी हुई है। कश्मीर के हालात सामान्य होने का एक प्रमाण यह है कि वहां बाजार खुलने के साथ ही सड़कों पर पहले जैसी चहल-पहल दिखने लगी है। इसके अलावा बनिहाल और श्रीनगर के बीच करीब तीन महीने से बंद रेल सेवा फिर से शुरू हो गई है। सरकार की ओर से संकेत दिए गए हैं कि अगले कुछ दिनों में इंटरनेट सेवा भी बहाल की जा सकती है। कश्मीर के हालात को लेकर शोर मचाने वाले इस पर गौर करें तो बेहतर कि इंटरनेट सेवा बहाल करने में सबसे बड़ी बाधा अलगाववादियों और आतंकवादियों द्वारा उसका दुरुपयोग किया जाना है। निःसंदेह इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि जहां सरकार कश्मीर के हालात ठीक करने के लिए हरसंभव प्रयास कर रही है वहीं शरारती तत्व अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे हैं। इसे देखते हुए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि पत्थरबाजी को उकसाने वालों के खिलाफ कठोर कार्रवाई की जाए। इस कार्रवाई के दायरे में आतंक समर्थक वे तत्व भी आने चाहिए जो अभी भी किसी न किसी रूप में सक्रिय हैं। इन तत्वों के दुस्साहस का दमन किया ही जाना चाहिए।

यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि घाटी में पाकपरस्त तत्वों की सक्रियता की एक बड़ी वजह अनुच्छेद 370 ही था। वे इस अनुच्छेद को इस रूप में पेश करते थे, जैसे कश्मीर भारत से भिन्न है और उसे इस देश से अलग होने का अधिकार है। इस अनुच्छेद का खात्मा केवल इसलिए जरूरी नहीं था कि वह अलगाववादियों की आड़ और औजार बन गया था, बल्कि इसलिए भी था, क्योंकि उसके जरिये पाकिस्तान यह दुष्प्रचार करने में समर्थ था कि उसे इस भारतीय भू-भाग में दखल देने का अधिकार है। अनुच्छेद 370 खत्म करने के बाद पाकिस्तान बुरी तरह बौखलाया तो इसीलिए कि वह कश्मीर का राग अलापने की फर्जी आड़ से हाथ धो बैठा। उसकी बौखलाहट की परवाह न करते हुए भारत को यह रेखांकित करते रहना चाहिए कि वास्तव में उसे गुलाम कश्मीर में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। इससे ही पाकिस्तान और साथ ही कश्मीर में उसकी तरफदारी करने वालों के हौसले पस्त होंगे। जहां तक नजरबंद कश्मीरी नेताओं की रिहाई की मांग है तो इस मांग पर विचार तभी किया जाना चाहिए जब यह भरोसा हो जाए कि वे अलगाववादी तत्वों को उकसाने का काम नहीं करेंगे।

बेहाल कोलकाता

सिर्फ राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में ही हवा और पानी प्रदूषित नहीं है। इस कड़ी में कोलकाता भी पीछे नहीं है। बंगाल की राजधानी में भी हवा और पानी दोनों ही लगातार खराब स्थिति में पहुंचते जा रहे हैं। तीन दिन पहले हवा और पानी की गुणवत्ता को लेकर आई दो रिपोर्ट के मुताबिक कोलकाता की हालत दिल्ली से थोड़ी ही पतली है। मौसम का पूर्वानुमान बताने वाली निजी क्षेत्र की एजेंसी स्काईमेट द्वारा शुक्रवार को जारी आंकड़ों में दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में दिल्ली जहां शीर्ष पर है वहीं दुनिया के 10 सबसे प्रदूषित शहरों में कोलकाता पांचवें स्थान पर है। यही नहीं पानी की शुद्धता पर जारी रैंकिंग में दिल्ली से महज एक स्थान ऊपर कोलकाता है। 21 शहरों की रैंकिंग में दिल्ली सबसे आखिरी पायदान पर है, जबकि 20 वें स्थान पर कोलकाता है। भारतीय मानक ब्यूरो ने इसकी रिपोर्ट तैयार की है। दिल्ली में नल के पानी के 11 में से सभी 11 नमूने 10 मानकों पर फेल हो गए। कोलकाता और चेन्नई का हाल भी कुछ ऐसा ही है। इनके 11 में से 10 नमूने फेल हुए हैं। पानी की गुणवत्ता की जांच के लिए दिल्ली के अलावा देशभर में 20 राज्यों की राजधानियों से पानी के नमूने लिए गए थे। इस रिपोर्ट में पहले नंबर पर मुंबई है। यहां का पानी हर मानक पर खरा उतरा। इसमें दूसरे पायदान पर हैदराबाद और तीसरे नंबर पर भुवनेश्वर है, परंतु कोलकाता का हाल बेहाल है। लोग प्रदूषित हवा और पानी के साथ जीने को मजबूर हैं। आखिर क्या वजह है कि लगातार कोलकाता की हवा प्रदूषित होती जा रही है? वहीं नगर निगम से लेकर नगर पालिकाओं द्वारा आपूर्ति किए जाने वाला पेय जल भी क्यों स्वच्छ नहीं है? इस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। ऐसा इसलिए, क्योंकि राज्य सरकार और शहरी निकाय की ओर से लगातार यह कहा जा रहा है कि भूगर्भ जल के दोहन पर लगाम लगाने के साथ ही निकायों द्वारा पर्याप्त जल आपूर्ति की जा रही है। क्या शहरी निकायों द्वारा आपूर्ति किए जाने वाला पेयजल शुद्ध व स्वच्छ है? अब यह बड़ा सवाल बन गया है। क्योंकि, जिस तरह से पानी की रैंकिंग में 21 शहरों में कोलकाता का स्थान 20 वां हैं तो उससे साफ हो चुका है कि लोग दूषित जल पी रहे हैं और तरह-तरह की बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं। केंद्र सरकार की इस रैंकिंग के बाद अब तक कोलकाता नगर निगम या फिर बंगाल सरकार की ओर से यह बातें सामने नहीं आई है कि इस मोर्चे पर हालात कब सुधरेंगे? इसके लिए केवल आरोप-प्रत्यारोप से ही बात नहीं बनेगी, बल्कि कुछ परिवर्तनकारी कदम उठाने होंगे।

कोलकाता का भी हाल बेहाल है। लोग प्रदूषित हवा और पानी के साथ जीने को मजबूर हैं

सबको राहत देने वाला फैसला

ए. सूर्यप्रकाश

अयोध्या पर उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भारत की प्रतिक्रिया अन्य देशों के लिए लोकतंत्र का एक अहम सबक बननी चाहिए

अवधेश राजपूत

अयोध्या मामले में सुप्रीम कोर्ट के सर्वसम्मति से आए फैसले ने सदियों से देश के सांप्रदायिक सौहार्द को बिगाड़ने वाले एक मामले का पटाक्षेप कर दिया। बड़ी बात यह रही कि हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों ने फैसले को जिस तरह स्वीकारा उससे नवंबर का यह महीना और ऐतिहासिक बन गया। इस फैसले को देश भर में सौहार्द एवं भाईचारे की भावना के साथ स्वीकार किया गया। फैसले से पहले ही दोनों पक्षों ने दोहराया था कि निर्णय चाहे जो हो, वह उन्हें स्वीकार होगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी लोगों से अपील की थी कि शीर्ष अदालत जो भी निर्णय करे, उसे स्वीकार करना चाहिए। फैसले के एक दिन बाद राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल ने दोनों समुदायों के शीर्ष नेताओं को चर्चा के लिए भोज पर आमंत्रित किया। इसमें शांति एवं सांप्रदायिक सौहार्द बनाए रखने की प्रतिबद्धता जताई गई। वहां सभी ने संविधान की शपथ के साथ दोहराया कि इस फैसले से शांति एवं भाईचारे के आधार पर नए भारत की बुनियाद रखी जानी चाहिए।

आखिर एक अरब से अधिक आबादी वाले हिंदू समुदाय को वह जमीन मिल गई जिसके बारे में उसकी दृढ़ मान्यता है कि इसी स्थान पर भगवान राम का जन्म हुआ था। इस फैसले पर हिंदुओं की प्रतिक्रिया बहुत संयमित रही। इसी तरह मुस्लिमों को भले ही इस मामले में जीत नहीं मिली हो, लेकिन उन्होंने अपने वादे को निभाया कि वे अदालती फैसले को मानेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह केंद्र सरकार और दोनों समुदायों के शीर्ष नेताओं के बीच बने बढ़िया तालमेल का परिणाम था। इसके लिए सरकार ने फैसले से पहले ही तैयारी शुरू कर दी थी। दुनिया में सबसे अधिक विविधतापूर्ण देश में बेहतर गवर्नेंस का इससे बढ़िया क्या और कोई उदाहरण हो सकता है?

वास्तव में अयोध्या फैसले पर भारत की प्रतिक्रिया अन्य देशों के लिए लोकतंत्र का एक अहम सबक बननी चाहिए। फैसले के बाद बने परिदृश्य ने तमाम विघ्नसंतोषियों को निराश किया। इसमें खासतौर से अंतरराष्ट्रीय मीडिया और भारत में उनके सहोदर विशेष रूप से हाथ मलते रह गए। फैसले की आम स्वीकार्यता में सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ की भी अहम भूमिका रही। उसने जिन साक्ष्यों और दलीलों के आधार पर फैसला सुनाया वे बेहद महत्वपूर्ण रहीं। हिंदू लगातार इस बात पर जोर दे रहे थे कि यह उनकी आस्था का मामला है। इस पर अदालत ने स्पष्ट कर दिया कि यह अचल संपत्ति से जुड़ा विवाद है जिसमें आस्था के आधार पर मालिकाना हक नहीं दिया जा सकता। उसने दो टूक कहा था कि निर्णय साक्ष्यों के आधार पर ही होगा। उसने कहा कि विवादित संपत्ति का स्वामित्व निर्धारित करने के लिए साक्ष्यों का सिद्धांत ही लागू होता है।

साक्ष्यों के आकलन के बाद अदालत ने पाया, 'सभी संभावनाओं का संतुलन यही स्पष्ट संकेत करता है कि अयोध्या में ढांचा बनने के बावजूद हिंदू बाहरी चबूतरे पर पूजा-अर्चना करते रहे। बाहरी चबूतरे पर नियंत्रण के साथ उस पर उनके स्वामित्व की बात पुष्ट होती है।' आंतरिक चबूतरे के बारे में भी अदालत ने कहा, 'ऐसी संभावनाओं के साक्ष्य मिलते हैं कि 1857 में अवध के ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बनने से पहले तक हिंदू वहां पूजा करते रहे।' इन दो निष्कर्षों के अलावा मुस्लिम पक्ष द्वारा कोई पुख्ता 'साक्ष्य' न पेश किया जाना सुप्रीम कोर्ट के फैसले का प्रमुख आधार बना। फैसले के मुताबिक मुस्लिम पक्ष अपनी दलील के पक्ष में कोई ऐसा साक्ष्य पेश नहीं कर सका कि 1857 से पहले आंतरिक ढांचे पर उनका नियंत्रण था, जबकि मस्जिद का निर्माण सोलहवीं शताब्दी में हुआ।

शीर्ष अदालत ने मंदिर निर्माण और उससे जुड़े मामलों के लिए एक न्यास बनाने का निर्देश दिया है। इसके साथ ही मस्जिद निर्माण और अन्य गतिविधियों के लिए वैकल्पिक जमीन उपलब्ध कराने की व्यवस्था भी की है। अपने आदेश में शीर्ष अदालत ने कहा कि विवादित स्थल पर दावे को लेकर मुस्लिम पक्ष की तुलना में हिंदुओं की दलीलें दमदार होने के बावजूद इन तथ्यों की अनदेखी नहीं की जा सकती कि हिंदुओं द्वारा दिसंबर, 1949 में मस्जिद में तोड़फोड़ और फिर 6 दिसंबर, 1992 को उसे पूरी तरह गिरा देने के बाद मुस्लिमों को उससे बेदखल होना पड़ा। दूसरे शब्दों में कहें तो अदालत ने माना कि मुस्लिमों ने मस्जिद पर दावा नहीं छोड़ा। इन तथ्यों के आलोक में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि वह संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए सुनिश्चित करेगा कि पुरानी गलतियों को दुरुस्त किया जाए। अदालत ने कहा, 'मुस्लिमों की पात्रता के दावे की अनदेखी करके इस मामले में न्याय नहीं हो पाएगा, जिन्हें मस्जिद से उन स्थितियों में अलग होना पड़ा जिन्हें कानून व्यवस्था के प्रति समर्पित किसी धर्मनिरपेक्ष देश में स्वीकार नहीं किया जा सकता। संविधान धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। सहिष्णुता और सह-अस्तित्व की अवधारणा हमारे राष्ट्र और उसके नागरिकों की धर्मनिरपेक्ष प्रतिबद्धता को पोषित करती हैं।'

मुस्लिम पक्ष को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने अनुच्छेद 142 में निहित अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग किया। इसके तहत उसने मुस्लिमों को अयोध्या में ही पांच एकड़ जमीन उपलब्ध कराने का आदेश दिया। यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह अपने समक्ष लंबित किसी भी मामले में 'पूर्ण रूप से न्याय करने के लिए' कोई डिक्री या आदेश पारित कर सकता है। जहां कुछ 'अन्याय का अंदेशा' हो वहां इसके जरिये राहत दी जा सकती है। अतीत में अदालत ने यह रुख भी अपनाया कि बेहतर है कि इस शक्ति को परिभाषित ही न किया जाए ताकि राहत देने के लिए उसके पास लचीलेपन की गुंजाइश बनी रहे। यह शक्ति बहुत किफायत के साथ इस्तेमाल होती है। यह अदालत की उस मंशा की भी द्योतक है कि संतुलन साधने के लिए वह एक दायरे से बाहर जाने के लिए भी तैयार है।

हालांकि इस मामले के तमाम पक्षकार अब इसकी इतिश्री करना चाहते हैं, लेकिन ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने पुनर्विचार याचिका दायर करने का फैसला किया है। यह एक वैधानिक कदम है, क्योंकि अदालती कार्यवाही इसकी अनुमति देती है। हालांकि इस मामले में हैदराबाद के सांसद असदुद्दीन ओवैसी का बयान बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। उन्होंने कहा है कि मुसलमानों को पांच एकड़ जमीन की यह 'खैरात' नहीं चाहिए। अच्छी बात यह रही कि फैसले के बाद ऐसे विषैले बयान कम ही सुनाई पड़े। यह शुभ संकेत है कि ऐसे इक्का-दुक्का विषैले बोल लोकतंत्र एवं संवैधानिक मूल्यों में आस्था रखने वालों की एक सुर में की गई सराहना के आगे दब गए।

(लेखक प्रसार भारती के चेयरमैन एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

शिक्षा संस्थानों की फीस का सवाल

प्रो. निरंजन कुमार

वक्त के साथ फीस वृद्धि होगी ही, लेकिन यह भी देखना होगा कि कोई गरीब छात्र इसके चलते उच्च शिक्षा से वंचित न रहे

देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में से एक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय यानी जेएनयू एक बार फिर विवाद के केंद्र में है। विवाद का मुख्य मुद्दा है छात्रावास और मेस की फीस, जिसके खिलाफ छात्र आंदोलित हैं। बढ़ी फीस में कटौती के बाद भी उसे लेकर सड़क से लेकर सोशल मीडिया तक हंगामा है। इसमें विश्वविद्यालयों के शिक्षक भी शामिल हो गए हैं। फीस को लेकर छात्रों की मांग कितनी जायज है? नई शिक्षा नीति के प्रस्तावित मसौदे में इस मामले में क्या रुख है? इन सवालों पर विचार करने के साथ ही यह जानना प्रासंगिक होगा कि निजी क्षेत्र में फीस की क्या स्थिति है, क्योंकि उच्च शिक्षा संस्थानों की बहुत बड़ी संख्या निजी क्षेत्र में है? वामपंथी, कांग्रेस समेत अन्य विचारधाराओं के छात्र संगठनों के साथ-साथ भाजपा समर्थक छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद भी फीस वृद्धि के खिलाफ है। फीस बढ़ाए जाने के पीछे एक कारण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बजट में कटौती को भी बताया जा रहा है। प्रस्तावित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा को लेकर बहुत ही महत्वाकांक्षी लक्ष्य हैं। मसलन उच्च शिक्षा में युवाओं (18-23 वर्ष) की सकल नामांकन दर को 2020 तक 30 प्रतिशत और 2035 तक 50 प्रतिशत तक ले जाना। अभी यह 25 फीसदी के लगभग है। विकसित देशों को तो छोड़िए, ब्राजील और चीन तक में यह जीईआर क्रमशः 50 और 44 प्रतिशत है।

नई शिक्षा नीति के तहत शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए 800 से अधिक उच्च शिक्षा संस्थानों के बुनियादी ढांचे में सुधार, 70 नए आदर्श कॉलेजों की स्थापना, बड़ी संख्या में नए मेडिकल कॉलेज, नए छात्रावास आदि की योजना है। इनके लिए बड़ी मात्रा में धनराशि चाहिए, लेकिन यह ध्यान रहे कि वैश्विक आर्थिक मंदी से भारत भी प्रभावित है और सरकारी बजट की भी एक सीमा है। महंगाई और दिल्ली जैसे महानगर को देखते हुए जेएनयू में फीस बढ़ोतरी मध्यम वर्ग के छात्रों के लिए बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन गरीब छात्रों के लिए यह अतिरिक्त बोझ है। उन्हें बढ़ी हुई फीस से परेशानी होना स्वाभाविक है। एक अनुमान के अनुसार इस समय देश में गरीबी रेखा के नीचे लगभग 22 से 23 करोड़ लोग हैं जिनकी पारिवारिक मासिक आय दस हजार रुपये से भी कम है। इस आय वर्ग के अनेक छात्र जेएनयू, दिल्ली विश्वविद्यालय समेत विभिन्न सरकारी शिक्षा संस्थानों में पढ़ते हैं। इनके लिए एक-एक रुपया जुटाना भारी है। इस आय वर्ग के छात्रों का आंदोलित होना स्वाभाविक है। कम फीस वाले सरकारी संस्थानों में एक अनुमान के अनुसार 25 से 30 प्रतिशत छात्र गरीब या निम्न आय वर्ग के होते हैं। वहीं 40 से 50 प्रतिशत छात्र निम्न मध्यम वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग के होते हैं। यह वर्ग फीस देने की स्थिति में होता है। ऐसे में अधिक आय वर्ग वाले विद्यार्थियों से ज्यादा फीस क्यों न वसूल की जाए ताकि बढ़ी फीस के कारण गरीब प्रतिभाशाली विद्यार्थी उच्च शिक्षा से वंचित न होने पाएं। सरकार को यह भी देखना चाहिए कि गुणवत्तापरक उच्च शिक्षा के कुछ ही केंद्र न रहें और ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे देश भर में गुणवत्तापरक शिक्षा मिल सके। इसके लिए दूरदराज के संस्थानों में सुधार के साथ ही नए गुणवत्तापरक संस्थान खोलने की जरूरत है।

यह राहतकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे में शिक्षा पर कुल सरकारी व्यय की मौजूदा 10 प्रतिशत राशि को अगले दस वर्षों में 20 प्रतिशत करने की सिफारिश की गई है। देश में शिक्षा की व्यापक जरूरतों को देखते हुए यह राशि भी नाकाफी है। जाहिर है कि समय के साथ फीस तो बढ़ानी ही पड़ेगी, लेकिन इसी के साथ यह उपाय भी करना होगा कि कोई गरीब विद्यार्थी फीस की वजह से उच्च शिक्षा से वंचित न रहे। हालांकि जेएनयू में छात्रों को छात्रवृत्ति मुहैया कराई जाती है, लेकिन शिक्षा में बढ़ते हुए नए खर्चों को देखते हुए वह नाकाफी है। बेहतर हो कि गरीब विद्यार्थियों के लिए छात्र-ऋण का एक नया मॉडल बनाया जाए। बीपीएल रेखा से नीचे के छात्रों को शून्य प्रतिशत दर पर और न्यून आय वाले तबके के छात्रों के लिए तीन-चार प्रतिशत दर पर शैक्षणिक ऋण आसानी से उपलब्ध कराया जाना चाहिए। सरकार को शैक्षणिक ऋण प्रक्रिया में संशोधन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैकल्पिक आर्थिक संसाधनों की भी तलाश की जानी चाहिए। सीएसआर के तहत प्रावधान किया जा सकता है कि इस धन का एक हिस्सा गरीब विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप के रूप में दिया जाए। प्रत्येक संस्थान में पूर्व छात्रों का एलुमनाई एसोसिएशन खोला जाना चाहिए, जो गरीब छात्रों के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करने में सहायक हो सके। इसी के साथ साधन संपन्न लोगों को शिक्षण संस्थानों से जुड़ने और आर्थिक मदद देने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति में धर्मशाला, प्याऊ, स्कूल और अस्पताल आदि खोलने की पुरानी परंपरा रही है। इस परंपरा को फिर से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके अलावा विद्या के लिए दान को प्रोत्साहन देने के लिए आयकर अधिनियम में यह संशोधन होना चाहिए कि सभी सरकारी शिक्षण संस्थाओं को दिए गए दान को आयकर छूट मिलेगी।

अगर हम निजी क्षेत्र के शिक्षण संस्थानों पर गौर करें तो पाएंगे कि इन संस्थानों की जो फीस है वह गरीब और निम्न मध्यम वर्ग को तो छोड़िए, मध्यम वर्ग की भी पहुंच से बाहर होती जा रही है। समय आ गया है कि निजी शिक्षा संस्थानों का सम्यक नियमन किया जाए। ध्यान रहे कि शिक्षा का व्यवसायीकरण न हो, इसका उल्लेख नई शिक्षा नीति के मसौदे में भी है। यह बात और है कि इस मसौदे में इसका कोई विस्तृत रोडमैप नहीं दिया गया है। उचित यह होगा कि निजी शिक्षा संस्थानों की लागत के अनुपात में फीस की एक अधिकतम सीमा निर्धारित की जाए ताकि इन संस्थानों को भी नुकसान न हो और कम आय वर्ग के छात्र उनमें शिक्षा भी प्राप्त कर सकें। गरीब और निम्न मध्यम वर्गीय तबके के छात्रों को गुणवत्तापरक उच्च शिक्षा मिले, यह उनकी सामाजिक गतिशीलता और देश की चतुर्दिक प्रगति के लिए आवश्यक है। इस प्रगति रूपी राष्ट्र यज्ञ में समाज के सभी तबकों की आहुति हो, यह सुनिश्चित किया जाना समय की मांग है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

समाधान

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में समस्याएं वैसे ही आती हैं जैसे दिन और रात का आना तय है। मगर जो मनुष्य समस्या या किसी उलझन के समय शांत तथा समभाव में रहकर समस्या को सुलझा लेता है, उसके लिए समस्या एक अनुभव मात्र होती है। वैसे सर्वप्रथम तथ्यों के आधार पर यह विचार करना चाहिए कि समस्या है भी या नहीं और यदि समस्या है तो उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। ऐसा इसलिए आवश्यक है, क्योंकि समस्या को सुलझाने के लिए स्वरूप जानना जरूरी होता है। अक्सर देखने में आता है कि समस्या का उचित विश्लेषण न करने के कारण समस्या से ग्रस्त मनुष्य मानसिक अवसाद का शिकार हो जाता है।

समस्या को स्वयं सुलझाने के लिए मनुष्य का सबसे बड़ा सहायक मन होता है। मन जितना शांत होगा, समस्या उतनी ही आसानी से सुलझ जाती है। यह स्पष्ट है कि बेचैन तथा परेशान मन कुछ भी सार्थक सोच-समझ नहीं सकता। इस प्रकार का मन केवल पहेलियां बनाता है, उन्हें सुलझाता नहीं। अक्सर समाधान समस्या की तह में ही छुपा होता है, उसकी ऊपरी सतह पर नहीं। ऐसे में प्रश्न उठता है कि मन को शांत अवस्था में कैसे लाया जाए। इसके लिए ध्यान एक रामबाण उपाय है। ध्यान के द्वारा मनुष्य का मन ध्यान की अवधि में भटकना बंद हो जाता है। इस कारण मस्तिष्क को भी मन के ठहराव के कारण विश्राम मिल जाता है और मस्तिष्क तरोताजा होकर समस्या के बारे में अच्छी प्रकार तथ्यों के आधार पर विचार करके उत्तर निकालता है।

इसीलिए जब भी समस्या आए, मनुष्य को ध्यान जरूर करना चाहिए और हो सके तो इस समय ध्यान ज्यादा समय के लिए करना चाहिए। ध्यान के समय समस्या ईश्वर को सौंपकर शरीर में ईश्वरीय अंश यानी आत्मा से उसके उत्तर की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यह अटल सत्य है कि आत्मा हर समस्या का उचित उत्तर जरूर देती है। समस्याओं के स्थायी समाधान के लिए ध्यान को अपनी दिनचर्या में शामिल करके समस्याओं का उचित समाधान करने में जुट जाएं।

कर्नल शिवदान सिंह

बढ़ते मर्ज की तुलना में घटते डॉक्टर

सौरभ जैन

इससे सेवारत चिकित्सकों पर काम का बोझ बढ़ा है। इसका असर इलाज की उपलब्धता एवं गुणवत्ता पर भी पड़ रहा है

केंद्र सरकार की आयुष्मान भारत जैसी महत्वाकांक्षी योजना तभी सफल होगी जब देश में पर्याप्त डॉक्टर होंगे। भारत में फिलहाल छह लाख से ज्यादा चिकित्सकों की कमी है। गरीब पूरी तरह सरकारी अस्पतालों पर निर्भर हैं। वहां विशेषज्ञों की भारी कमी है। स्वास्थ्य मंत्रालय के मुताबिक 28 राज्यों और नौ केंद्र शासित प्रदेशों में मानकों के मुताबिक कुल 22,496 विशेषज्ञ चिकित्सक होने चाहिए। परंतु इतने स्वीकृत ही नहीं हैं। अभी कुल 13,635 पद ही सृजित हैं। इसकी तुलना में सिर्फ 4,074 विशेषज्ञ ही कार्यरत हैं।

भारत में 1,472 नागरिकों पर मात्र एक चिकित्सक उपलब्ध है। वहीं विश्व स्वास्थ्य संगठन यानी डब्ल्यूएचओ एक हजार आबादी पर कम से कम एक चिकित्सक के मानक की बात करता है। डब्ल्यूएचओ की संबंधित रिपोर्ट में इसका उल्लेख है कि लगभग पांच करोड़ भारतीय अपने घरेलू बजट का एक चौथाई से ज्यादा खर्च इलाज पर करते हैं, जबकि श्रीलंका में ऐसी आबादी महज 0.1 प्रतिशत, ब्रिटेन में 0.5 फीसद, अमेरिका में 0.8 फीसद और चीन में 4.8 फीसद है। भारत में लगभग 23 करोड़ लोगों को वर्ष 2007 से 2015 के बीच अपनी आय का 10 फीसद से अधिक हिस्सा इलाज पर खर्च करना पड़ा। भारत में स्वास्थ्य पर होने वाला 67.7 फीसद खर्च नागरिकों द्वारा होता जबकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा मात्र 17.3 प्रतिशत है।

चिकित्सकों की संख्या में कमी के बीच देश भर में मरीजों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसे में सेवारत चिकित्सकों पर काम का बोझ बढ़ा है। नतीजतन भारत में चिकित्सक औसतन दो मिनट ही मरीजों को देखते हैं। कुछ अध्ययनों में इसकी पुष्टि भी हुई है। जब सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में डिग्रीधारी योग्य चिकित्सक उपलब्ध नहीं होते तो झोलाछाप डॉक्टर इस मौका का पूरा फायदा उठाते हैं। वर्ष 2016 में जारी विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में एलोपैथिक चिकित्सक के रूप में प्रैक्टिस करने वाले चिकित्सकों में एक तिहाई ऐसे हैं, जिनके पास मरीजों का इलाज करने के लिए उपयुक्त डिग्री ही नहीं है। इसके बावजूद वे धड़ल्ले से लोगों का इलाज कर रहे हैं। मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया के पास वर्ष 2017 तक कुल 10.41 लाख पंजीकृत चिकित्सक थे। इनमें सरकारी अस्पतालों में सेवाएं देने वाले चिकित्सकों की संख्या 1.20 लाख थी। शेष निजी क्षेत्र से जुड़े थे।

सरकार अस्पतालों में रिक्त पदों पर भर्ती के लिए विज्ञापन भी निकालती है, किंतु निजी क्षेत्रों में अधिक संभावनाओं के चलते युवा चिकित्सकों का रुझान शासकीय अस्पतालों में सेवा देने में नहीं है। ज्ञात रहे कि शहरी क्षेत्रों में प्रति एक लाख लोगों के लिए 176 चिकित्सक हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में एक लाख लोगों के लिए मात्र आठ से भी कम चिकित्सक उपलब्ध हैं और हर वर्ष भारत में 269 निजी और सरकारी मेडिकल कॉलेजों से लगभग 31,000 चिकित्सक स्नातक करते हैं। अतः इस दिशा में काम किया जाना बेहद जरूरी है।

(लेखक देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर में शोध अध्येता हैं)

मेलबाक्स

टिकाऊ बने हमारी अर्थव्यवस्था

अटकी परियोजनाओं को उबारने की चुनौती- शीर्षक से लिखे अपने लेख में डॉ. भरत झुनझुनवाला ने रियल एस्टेट में दिख रही मंदी को दूर करने के लिए बने हुए फ्लैट्स की आपूर्ति को बढ़ाने के बजाय मांग पक्ष को मजबूत करने पर बल दिया है, लेकिन यह काम इतना आसान भी नहीं। चूंकि मांग का सीधा सरोकार रोजगार से है तो सरकार को मुक्त व्यापार वाली वर्तमान वैश्विक व्यवस्था के बीच भी रोजगार सृजन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े छोटे और मझोले उद्योगों को संरक्षण देना होगा, लेकिन वैश्विक प्रतिस्पर्धा के बीच छोटे और मझोले उद्योग अपना अस्तित्व कैसे बचा कर रखें, यह एक बड़ी चुनौती है। इसके लिए उन्हें सतत रूप से कौशल विकास तथा नवाचार की आवश्यकताओं पर खरा उतरना होगा। यह एक बहुमुखी कार्ययोजना होगी। एक बात और कि आर्थिक सेहत को सुधारने की किसी भी योजना में भ्रष्टाचार जैसे पक्ष पर भी सम्यक रूप से विचार किए जाने की जरूरत है, जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था, विशेषकर बैंकिंग और रियल एस्टेट को नुकसान पहुंचाने में बड़ी भूमिका निभाई है। संप्रग शासन, खासकर उसके दूसरे कार्यकाल में अविवेकपूर्ण तरीके से अंधाधुंध कर्ज बांटे गए, जिसका एक बड़ा भाग एनपीए बन गया। हालांकि, सरकार अब पहले से सचेत हो गई है, लेकिन जो नुकसान होना था वह हो चुका। उम्मीद है कि मौजूदा सरकार हर वह कदम उठाएगी जो भारतीय अर्थव्यवस्था को अधिक पारदर्शी, प्रतिस्पर्धी और टिकाऊ बनाए।

चंदन कुमार, देवघर

संसदीय प्रणाली में संतुलन का महत्व

यह पत्र 'राज्यसभा को संतुलन के साथ चलना होगा' के संदर्भ में है। बहस, विचार-विमर्श, मतभेद हमारी संसद का एक अभिन्न हिस्सा है। इनके बिना हमारी संसदीय प्रणाली किसी काम की नहीं है। पक्ष-विपक्ष दोनों को इसका भरपूर इस्तेमाल करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जो भी निर्णय संसद ले वह देश और लोगों के भले के लिए हो। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का यह कहना भी ठीक है कि राज्यसभा की भूमिका बहुत बड़ी है। सत्तापक्ष द्वारा विपक्ष को भी बोलने का पूरा मौका देना चाहिए ताकि वह अपनी बात और तर्क पेश कर सके। फिर उसे सुनने के बाद उचित निर्णय पर पहुंचा जाए। जहां तक संतुलन की बात है विपक्ष को भी आत्ममंथन करने की जरूरत है। हमें यही उम्मीद करनी चाहिए कि जितने भी लंबित बिल संसद में पड़े हैं, वे जल्द से जल्द पारित होकर कानून बनें।

बाल गोविंद, नोएडा

मोदी-गोटाबाया में समानता

जिस तरह 2014 के लोकसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने से चीन और पाकिस्तान के माथे पर बल पड़ गए थे, ठीक उसी प्रकार पड़ोसी देश श्रीलंका में गोटाबाया राजपक्षे के राष्ट्रपति चुने जाने से भारत के माथे पर बल पड़ गए हैं। नरेंद्र मोदी जहां भारत में बहुसंख्यकों के हिमायती माने जाते हैं, वहीं गोटाबाया भी बहुसंख्यक वर्ग सिंहली समर्थक माने जाते हैं। जिस तरह नरेंद्र मोदी की छवि एक निडर, साहसी, कठोर शासक की मानी जाती है, ठीक उसी प्रकार गोटाबाया कड़क शासक माने जाते हैं। भारत के लिए उनका चीन का समर्थक होना चिंताजनक है। चीन तो उनके बड़े भाई के राष्ट्रपति रहते ही श्रीलंका के नजदीक आ गया था और उसे हंबनटोटा बंदरगाह और एयरपोर्ट का ठेका मिल गया गया था। अब देखना यह है कि भारत की इस गठजोड़ से निपटने की क्या रणनीति होगी।

चंद्र प्रकाश शर्मा, रानी बाग, दिल्ली

न घर के रहे न घाट के

महाराष्ट्र में शिवसेना ने स्वयं ही अपनी फजीहत कराई है। उसने मुख्यमंत्री पद के मोह में तीस साल पुरानी सहयोगी भाजपा से नाता तोड़ लिया। उद्धव ठाकरे की महत्वाकांक्षा के कारण सरकार गठन अधर में लटक गया। कांग्रेस और राष्ट्रवादी कांग्रेस से समर्थन मांगने से पहले शिवसेना को यह सोचना चाहिए था कि जिन पार्टियों का उसने सदा विरोध किया है वे उसे मुख्यमंत्री का पद भला क्यों सौंप देंगी? शरद पवार राजनीति के पुराने खिलाड़ी हैं और वे इतनी आसानी से शिवसेना की बातों में आने वाले नहीं हैं और कांग्रेस तो शिवसेना को शीर्ष पर बैठाने से पहले सौ बार सोचेगी। कांग्रेस द्वारा शिवसेना को समर्थन देने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।